chapter. 7

: सप्तम अध्याय :

: उपसंहार :

WONDER

: सप्तम् अध्याय :

:: उपसंहार ::

किसी भी देश या समाज के इतिहास , स्वरूप , व्यवस्था , तंत्र , रीति-रिवाज , सभ्यता और संस्कृति को जानने-समझने के लिए साहित्य एक महत्त्वपूर्ण माध्यम-स्रोत होता है । साहित्य के द्वारा भी हम देश और समाज को पा सकते हैं , बल्कि कई बार और भी अच्छे तरीके से जान-समझ सकते हैं । इसलिए हमारे यहाँ ही नहीं सभी सभ्य - संस्कृत समाज और देश में साहित्य का महत्त्व अपरिहार्य समझा गया है । साहित्य का व्याप बहुत बड़ा है । उसमें कई विषय और शास्त्र आ जाते हैं । जब हम शास्त्र कहते हैं तो उसका अर्थ " लिटरेचर आफ नालेज " से सम्बद्ध है । साहित्य में कई बार अनेक विषयों का समन्वय होता है । बल्कि जिसे हम

सभ्यता और संस्कृति कहते हैं उसे जानने-समझने के लिए तो साहित्य से बेहतर और कोई साधन है ही नहीं । कदाचित इसीलिए गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर कहा करते थे कि जिन्होंने शास्त्र ( अन्य विषय) साहित्य दोनों को पढ़ा है उनका भाग्य सबसे ज्यादा बलवत्तर है । जिन्होंने केवल साहित्य पढ़ा है उनका भाग्य मध्यम कक्षा का है , पर जिन्होंने केवल ~~शास्त्र~~ शास्त्र पढ़ा है और साहित्य की तरफ झांका भी नहीं , उनका भाग्य तो मंदातिमंद है ।

जब एक बड़ा लेखक या कवि अपने पाठकों और भावकों को रचना के रूबरू कराता है तो उसमें अपने समय की अनेक बातें जाने-अनजाने अनुस्यूत हो जाती है । इसीलिए कार्ल मार्क्स ने बाल्ज़ाक के संदर्भ में कहा था कि फ्रान्स को जितना मैं बाल्ज़ाक के द्वारा जान पाया हूं उतना वहां के इतिहासविदों , समाजशास्त्रियों और शिक्षा-शास्त्रियों से भी नहीं जान पाया हूं । हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि एवं आलोचक डा. शिवमंगलसिंह सुमन ने मोरेशियस विश्व-हिन्दी सम्मेलन में कहा था कि किन्हीं कारणों से यदि हमारे सारे शास्त्र-ग्रन्थ विनष्ट हो जाते हैं , परन्तु यदि "रामचरितमानस " बच जाता है , तो हिन्दू धर्म एवं संस्कृति पुनः पल्लवित हो सकते हैं । ठीक यही बात हम प्रेमचंद , रेणु , मटियानी आदि लेखकों के संदर्भ कह सकते हैं कि किन्हीं कारणों से यदि हमारा समसामयिक इतिहास नष्ट हो जाता है तो हम इन लेखकों के द्वारा पुनः समय के आईने में झांक सकने में समर्थ हो सकते हैं ।

एक और बात भी हम यहां कहना चाहते हैं वह यह कि यदि कोई साहित्यकार कोई इतिहासग्रन्थ या शास्त्र-ग्रन्थ की ~~रचना~~ रचना करता है तो उसका वह ग्रन्थ अन्य प्रकार के लेखक जो साहित्यिक नहीं है , उनसे निश्चित रूप से भिन्न प्रकार का होगा । पंडित जवाहरलाल नेहरू का "~~डिस्~~ डिसकवरी आफ इण्डिया " इस माने में अलग पड़ता है क्योंकि पंडितजी में कहीं-न-

कहीं एक साहित्यकार छिपा हुआ दृष्टिगोचर होता है जिसे हम उनके निबंधों एवं लेखों में रेखांकित कर सकते हैं । यही बात हम "संस्कृति के चार अध्याय" नामक इतिहास-ग्रन्थ के संदर्भ में कह सकते हैं कि क्योंकि उसका रचनाकार भी एक जाना-माना कवि एवं लेखक है — डा. रामधारीसिंह दिनकर । साहित्यिक संस्पर्श के कारण ये कोरे पंडित नहीं लगते हैं । ।कहने का अभिप्राय यह कि साहित्य एक ऐसा विषय है जिसका जानकार जाने-अनजाने दूसरे कई विषयों की यात्रा कर लेता है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध - " हिन्दी कहानी : दलित विमर्श " में हमारा साहित्य-विषयक यही अभिमत अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है । इस विषय का चुनाव ही हमने साहित्य-प्रेम के कारण किया है । प्रारंभ से ही हमारी रूझान साहित्य की ओर रही है । इस कंटीले जगत-वृक्ष पर केवल दोही ऐसी वृन्त हैं जो हमें आकर्षित करती हैं — वे हैं साहित्य का अनुशीलन और गुणीजनों का प्रेम । एम.ए. की शिक्षा के दौरान ये साहित्यिक संस्कार और भी दृढ़ हुए उसमें प्रोफेसर पारूकान्त देसाई साहब का विशेष योगदान है । उनकी कक्षा में बैठने का मतलब या अनुभव अनेक विषयों में गोता लगाने के समान होता था । व्याकरण या भाषाविज्ञान जैसे शुष्क विषयों में भी वे प्राचीन भारतीय एवं मध्यकालीन भारतीय इतिहास , समाजशास्त्र , मनोविज्ञान जैसे विषयों की झांकी कराते थे । साहित्य की सभी विधाओं में कहानी की ओर मुझे सविशेष लगाव था , तथापि देसाई साहब के कारण ही मैंने उस समय विशेष पत्र के रूप में उपन्यास लिया था । उसके कारण तभी से एक विशिष्ट प्रकार की चेतना ने मुझमें जन्म ले लिया था ।

इस विषय के चुनाव में मेरी पारिवारिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि का भी उतना ही महत्व है । मैं स्वयं दलित-जाति से

सम्बद्ध हूं । मेरे पिता बी.एस.पी. के सक्रिय कार्यकर रहे हैं । उनकी गोष्ठियों में भी मैं बराबर जाती रही हूं । बौद्ध-साहित्य और ज्योतिबा फुले तथा आंबेडकर के साहित्य से गहरा संबंध रहा । फलतः शोध-प्रबंध की दो मुख्य अवधारणों के प्रति प्रेम व झुकाव होने के कारण इस विषय का चुनाव स्वाभाविक ही कहा जायेगा ।

शैशव काल से ही कहानी कहना और सुनना अच्छा लगता था । मनुष्य का मन बड़ा ही विचित्र है । मनोवैज्ञानिक उसकी तुलना "आईसबर्ग" से करते हैं । उसका केवल एक हिस्सा बाहर है । आठ हिस्से पानी में । इसीलिए इस मन को बड़ा ही गहरा और पेचीदा कहा गया है । उसका पार पाना अति कठिन है । मस्तिष्क के गह्वर में — लिबिडो xx में — क्या-क्या पड़ा है उसे जान पाना बड़ा ही मुश्किल है । मनुष्य कब कैसा व्यवहार करेगा, और ऐसा व्यवहार क्यों करेगा, उसे निश्चित करना बड़ा दुष्कर कार्य है । "नंगा" कहानी की रेवती कहां तो अपने बेटे के सुनिश्चित भविष्य के लिए पंचायत बिठाती है, गुमानी ठाकुर, एक समय के अपने प्रेमी के सामने ताल ठोककर खड़ी हो जाती है, न्याय चाहती है, अधिकार चाहती है, अपने बेटे के लिए जमीन में हिस्सा चाहती है; और कहां उस सब पर थूंक कर सब पर पानी फिराकर चली जाती है । क्यों कोई "महाभोज" की शिवरती अपने चालीस तोला xx चांदी की करधनी बेचकर भी अपने मरद की नाक को ऊंची रखना चाहती है । क्यों कोई मूलिया किसी चैनसिंह को पहले तो खरी-खरी सुनाती है और फिर उसे मिलने की पहलकदमी भी करती है ।

अभिप्राय यह कि मनुष्य के मन का पार पाना समुद्र की थाह पाने से भी कठिन कार्य है । यह अनंत के पार जाना जैसा है । मनुष्य अनंत का पार तो नहीं पा सकता, परन्तु उसके लिए प्रयत्न तो वह निरंतर कर ही रहा है । कहानी उसी प्रयत्न का एक उपक्रम है । और बड़ा ही कारगर उपक्रम है ।

सृष्टि पर की समस्त सृजनात्मक कलाएं एक आदमी की कहानी कह सकने से जुड़ी हैं । क्योंकि कहानी सिर्फ आदमी की ही हो सकती है और आदमी ही कहानी कह सकता है । अमर बताया गया है कि आदमी को कहना समुद्र और आकाश को कहने से कम कठिन नहीं है । जितना ही कहो उसे, "और कहो", "और कहो ऐसा सुनाई पड़ता है । उसके विस्तार के आगे गूंगे, बहरे, अंधे और लूले की भांति उपस्थित हो जाना पड़ता है और ऐसा करना ही शायद उसे और ज्यादा देख, सुन और पकड़ पाने में सहायक हो सकता है । यही कारण है कि कहानी कहते या लिखते में आदमी के साथ उपस्थित और अन्तर्लयित होना पड़ता है, क्योंकि तभी हम जान सकते हैं कि आदमी कितनी तरह से हु देखने और सुनने की वस्तु है । इस संदर्भ में एक शेर स्मृति में कौंध जाता है —

" कुछ हद ही नहीं यारब, मोहब्बत के फसाने की
सुनाता जा रहा है, जिसको जितना याद आता है ।"

ठीक उसी तरह कहा जा सकता है कि आदमी की कहानी का भी कोई ओर-छोर नहीं है । मानव-सभ्यता के साथ ही उसे कहने का जो दौर शुरू हुआ है, अभी चल ही रहा है । हर दौर और युग के आदमी ने अपने समय के आदमी की कहानी को, जितना वह समझ पाया, कहा है और आगे भी कहता रहेगा ।

मनुष्य की सबसे बड़ी जिज्ञासा मनुष्य है । दूसरा मनुष्य । उसे जानने की वह निरंतर कोशिश करता है । कहानी भी उन्हीं कोशिशों में से एक है । एक रेखा से हमें उसकी लंबाई का पता नहीं चलेगा । दूसरी रेखा खींचनी होगी । मनुष्य को भी हम दूसरे मनुष्य के साथ रखकर परख सकते हैं । फिर यह पदार्थ-चित्र जैसा है । जिस कोण से आप उसका चित्र लेंगे वह वैसा आयेगा । दूसरे कोण से उसमें भिन्नता भी पायी जा सकती है । अब हमारे कहानी-कारों ने मनुष्य को एक दूसरे कोने से देखना भी शुरू किया है ।

इस दूसरे कोण से देखने के कारण एक बहुत बड़ा उपेक्षित संसार हमारे सामने आ रहा है । और उसके कारण ही प्रबंध का यह विषय भी — " हिन्दी कहानी : दलित विमर्श " ।

यह तो अनेक बार कहा गया है कि आधुनिक काल के प्रमुख विमर्श दो रहे हैं — नारी विमर्श और दलित विमर्श । प्रस्तुत प्रबंध में हमने हिन्दी कहानी को दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न किया है । दलित-विमर्श के अन्तर्गत वे तमाम मुद्दे आयेंगेजिन मुद्दों को सामने रखकर हम दलित-जीवन की समस्याओं, उनकी विडम्बनाओं, उनकी दीन-हीन परिस्थिति, उनकी आकांक्षाएं, उनके विश्वास - अविश्वास, उनकी शक्ति और सीमा को आकलित कर सकते हैं । जिन कहानियों में भी दलित-जीवन के ये आयाम आये हैं उनको हमने अपने अध्ययन का विषय बनाया है । विमर्श का अर्थ है चिंतन, समझदारी, सूझ-बूझ, निरीक्षण-परीक्षण आदि ।

जैसा कि अभर निर्दिष्ट किया गया है हमारे शोध-प्रबंध का विषय "हिन्दी कहानी" से सम्बद्ध है । अतः उसके प्रथम अध्याय में हमने हिन्दी कहानी विषयक कतिपय मुद्दों की पड़ताल की है । कहानी तो प्राचीन समय से हमारे यहां मिलती है, परन्तु आज हम जिसे कहानी कहते हैं, वह पूर्णरूपेण आधुनिक काल की देन है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभावस्वरूप उसका आविर्भाव हुआ है । पुरानी कहानी अवैज्ञानिक, अतार्किक, चमत्कारपूर्ण, कपोलकल्पित एवं वायवी घटनाओं से पूर्ण, मनोरंजनप्रधान या बोध-प्रधान होती थी, वह देशकाल-तत्व से रहित होती थी, प्रायः कथा-सूत्रों ( स्टोरी-मोटिफ ) पर आधारित होती थी ; वहां आधुनिक कहानी इस नये युग की नयी देन है, वह तर्क और यथार्थ मानवानुभवों पर आधारित है । ~~अछ×छ×त्र×कह×त्र~~ उसका परिवेश भी प्रायः सामंतकालीन न होकर लोकतांत्रिक है । उसके

केन्द्र में सामान्य मनुष्य और उसकी व्यथा-कथा है । मानवीय संवेदना उसकी मूलभूत पूंजी है । प्रस्तुत अध्याय में विषय की ओर उन्मुख होने के लिए विषय से सम्बद्ध कुछ मुद्दों की सैद्धान्तिक चर्चा की गई है । प्रबंध का विषय कहानी से जुड़ा हुआ है , अतः कहानी की परिभाषा और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए , उपन्यास से उसके अंतर को भी दर्शाया गया है । यह इसलिए आवश्यक हो गया कि दोनों साहित्य-रूप कथा-साहित्य के अन्तर्गत आते हैं और प्रायः दोनों तत्व भी समान हैं । तत्पश्चात् हिन्दी कहानी के विकास में प्रेमचंद , प्रसाद , यशपाल , अज्ञेय , जैनेन्द्र प्रभृति कहानीकारों के योगदान को मूल्यांकित करते हुए कहानी के विकास में नयी कहानी , साठोत्तरी कहानी , समकालीन कहानी तक के विकास को लक्षित किया गया है । आधुनिक कहानी का यथार्थ से क्या सरोकार है , उसमें हमारे समसामयिक जीवन का यथार्थ चित्र किस रूप में उभरकर आया है उसे निर्दिष्ट करते हुए उसे दलित-विमर्श से अनुस्यूत करने का प्रयत्न किया है । दलित-विमर्श के संदर्भ में उन पर थोपी गयीं सामाजिक, धार्मिक , राजनैतिक, आर्थिक निर्योग्यताओं ( डिसएबिलिटीज़ ) को भी निरूपित किया गया है क्योंकि उसके अभाव में दलित-विमर्श के बहुत से आयाम स्पष्ट नहीं होते हैं । यहां हम देख सकते हैं कि दलित जातियों का शोषण सहस्त्राधिक वर्षों से हो रहा है । वैदिक कर्म-काण्ड की सोम-क्रयण लीला में भी उसे लक्षित किया जा सकता है । धार्मिक निर्योग्यताओं के अन्तर्गत दलित जातियों को धर्म और शास्त्र का हवाला देकर उनको धार्मिक विधियों , क्रियाओं अनुष्ठानों , धार्मिक संस्कारों , मंदिर तथा तीर्थ-स्थानों से अलिप्त रखा गया । सामाजिक निर्योग्यताओं द्वारा उन्हें सामाजिक अधिकारों तथा सामाजिक संपर्कों से अलग रखा गया । सार्वजनिक वस्तुओं और स्थानों के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया । दलित समाज एक पृथक निरक्षर समाज बन कर

रह गया ।

आर्थिक निर्योग्यताओं के कारण एक ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण हुआ जिसके कारण उनका कभी आर्थिक विकास ही न हो सके । ऐसे अन्यायमूलक और शोषणोन्मुखी नियम बनाए गए कि दलित वर्ग के पास कभी चल-अचल किसी प्रकार की संपत्ति का एकत्रीकरण ही न हो । पेट दबा रहेगा तो आदमी भी दबा रहेगा इस अमानवीय सोच के तहत उनको ~~xxxx~~ तमाम प्रकार के आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा गया । राजनीतिक निर्योग्यताओं के कारण राज्य तथा समाज में उसकी कोई भागीदारी ही नहीं थी । वे उनके साथ हुए अन्याय और अत्याचार की दाद-फरियाद भी नहीं कर सकते थे । इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म , शास्त्र , पंडे-पुरोहितों , परंपराओं तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के द्वारा उनका इतना दमन हुआ की उनकी स्थिति जानवरों से भी बदतर हो गयी । इन सब मुद्दों की पड़ताल इस अध्याय में हुई है ।

द्वितीय अध्याय में दलित-विमर्श के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने की एक ईमानदार कोशिश की गई है , क्योंकि प्रस्तुत शोध-प्रबंध में दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में ही हिन्दी कहानी साहित्य पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार होगा , अतः यह एक अनिवार्यता है । इसमें दलित-विमर्श और बौद्धमत , बौद्धमत पर पुराणों द्वारा आक्रमण , जैनों और बौद्धों पर शैवों के प्रहार , इस्लाम का आगमन , भारत में बौद्धधर्म का लोप , दलित-विमर्श और कबीर , स्वतंत्रता के पूर्व दलित जागरण की प्रवृत्तियां , उसके प्रमुख उन्नायक, स्वातंत्र्योत्तरकाल में दलित-जागरण एवं दलितोद्धार के प्रयत्न , दलित-विमर्श और साहित्य का संबंध ~~xxx~~ , मराठी साहित्य में दलित-विमर्श का चित्रण जैसे मुद्दों की गहरी छानबीन की गई है ।

इस अध्याय में यह भी स्पष्ट किया गया है कि दलित जातियों में उन पिछड़ी जातियों को समाविष्ट किया जा सकता

है जिनके ऊपर पूर्ववर्ती अध्याय में निर्दिष्ट निर्योग्यताओं को थोपा गया है । दलित-विमर्श का प्रारंभ बौद्धधर्म के आगमन से होता है । वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा पर पहली करारी चोट बौद्धधर्म द्वारा होती है । बुद्ध के समय हमारे यहां दो प्रकार की विचार-धाराएं प्रवर्तमान थीं — वर्णाश्रम-व्यवस्था को उचित ठहरानेवाली विचारधारा और उसको नकारने वाली विचारधारा । इस दूसरी विचारधारा के नेता बुद्धदेव थे जिस परंपरा में आगे चलकर सिद्ध साधु , कबीर , दादू , नानक आदि निर्गुण परंपरा के संत आते हैं । ~~दूसरे विचार~~ पहली विचारधारा के नेता ब्राह्मण आचार्य हुए जिन्होंने स्मृतियों की रचना कर जातिप्रथा को और भी पुष्ट किया । बौद्धधर्म वर्णाश्रम के खिलाफ था अतः उसके बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए तमाम प्रकार के हथकण्डों का प्रयोग हुआ । भारत में जब इस्लाम का आगमन हुआ था तब हमारे यहां बहुत-से अवैदिक और वेद-बाह्य संप्रदाय थे , इस्लाम के आगमन ने उनके सामने दूसरे विकल्प को खोल दिया । बुद्धदेव के पश्चात् दलित-विमर्श को भक्तिकाल के क्रान्तद्रष्टा कवि कबीर ने आगे बढ़ाया । उन्होंने दलित-वर्ग में स्वाभिमान और अस्मिता को जगाते हुए मूर्तिपूजा , शास्त्र , संस्कृत आदि सभी को नकारकर एक विद्रोहात्मक भूमि को तैयार किया ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से जो दलित-जागरण शुरू हुआ उसके उन्नायकों में गोपालराव देशमुख , महात्मा ज्योतिबा फुले , गोपालगणेश आगरकर , अन्नासाहब कर्वे , बड़ौदा के महाराजा श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड , गोपालकृष्ण गोखले , महात्मा गांधी , विट्ठलरामजी शिन्दे , वीर सावरकर , कोल्हापुर के महाराजा राजर्षि श्री साहूजी महाराज , भाउराव पाटिल तथा डा. बाबासाहब आंबेडकर आदि के योगदान को यहां स्पष्ट किया गया है । इस अध्याय में स्वातंत्र्योत्तरकाल में दलितोद्धार को केन्द्र में रखकर जो कानून बने उनकी विवेचना

भी की गई है । भारतीय साहित्य में मराठी साहित्य के अन्तर्गत दलित-साहित्य का विशेष महत्व है । मराठी दलित साहित्य में प्रायः सभी विधाओं में दलित-साहित्य उपलब्ध होता है । प्रमाणात्मक एवं गुणात्मक उभय दृष्टि से मराठी का दलित साहित्य अधिक ओजस्वी है क्योंकि उसके मूल में डा. बाबासाहब अम्बेडकर तथा ज्योतिबा फुले जैसे क्रान्तिकारी विचारकों की प्रेरणा रही है । इस प्रकार इस अध्याय में दलित-विमर्श के प्रायः सभी सम्भावित आयामों पर विस्तार से विचार किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध दलित-विमर्श से अनुबंधित है , अतः तृतीय अध्याय में हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत जो दलित-विमर्श उपलब्ध होता है उसकी युक्तियुक्त चर्चा करने का हमारा उपक्रम रहा है । इसमें आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक की काव्यधारा में जो दलित-चेतना के स्वर उभरे हैं उनको रेखांकित किया गया है । आधुनिक काल के पूर्व तक गद्य का समुन्नत विकास नहीं हुआ था , लेकिन आधुनिक काल में गद्य का इतना विकास हुआ कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो आधुनिक काल को "गद्यकाल" के नाम से अभिहित करते हैं । अतः आधुनिक काल में काव्य के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक , निबंध , आत्मकथा , संस्मरण आदि सभी साहित्य के रूपों में दलित-चेतना की प्रवृत्तियां हमें मिलती हैं ।

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के अन्तर्गत सिद्ध कवि , नाथ कवि , आदि में सर्वप्रथम हमें दलित-विमर्श उपलब्ध होता है । परवर्ती काल के कबीर आदि संत-कवियों की पृष्ठभूमि का निर्माण इन्हीं कवियों ने किया था । दलित -विमर्श की जोरदार प्रस्तुति भक्तिकाल के अन्तर्गत निर्गुण धारा के संत कवियों में मिलती है । कबीर ने धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर खींची गयीं तमाम दीवारों को ढहा दिया । उनको हम इस परंपरा का प्रथम सामाजिक-न्याय का कवि कह सकते हैं । कबीर के उपरांत

रैदास , नानक , दादूदयाल , मलूकदास , गरीबदास , जगजीवन-दास , पल्टूदास , बुल्लासाहब , दयाबाई , सहजोबाई , फरीद आदि संत कवियों की वाणी उपलब्ध होती है जिनके स्वर दलित-चेतना से अनुप्राणित हैं । इन निर्गुण संत कवियों के अलावा राम-भक्ति शाखा के नाभादास , कृष्णभक्ति शाखा के सूरदास , कृष्ण-दास , मीराबाई आदि कवियों में कहीं-कहीं स्थापित जीवन-मूल्यों के प्रति विद्रोह का भाव मिलता है । रीतिकाल में यह प्रवृत्ति एकदम मंद पड़ गई है ।

दलित-विमर्श की दृष्टि से हिन्दी का आधुनिक काल महत्वपूर्ण है । आधुनिक काव्यधारा में मैथिलीशरण गुप्त , सूर्यकान्त त्रि त्रिपाठी निराला , सुमित्रानंदन पंत , रामकुमार वर्मा , ~~बलदेव~~ उदय शंकर भट्ट , रामधारीसिंह दिनकर , जगदीश गुप्त आदि कवियों में हमें दलित-चेतना के स्वर सुनाई पड़ते हैं । इस काल-खण्ड के दलित-कवियों में पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी , श्योराजसिंह , डा. कुसुम वियोगी , हेमलता माहेश्वरी , ओमप्रकाश वाल्मीकि , मलखानसिंह , राजेन्द्र चन्द्रा आदि के नाम उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं । इनके दलित-चेतना के स्वर अधिक प्रखर हैं । कबीरवाली प्रखरता यहां उपलब्ध होती है ।

काव्यधारा के अतिरिक्त साहित्य के दूसरे स्वरूप जैसे उपन्यास , नाटक , निबंध , संस्मरण , आत्मकथा आदि में भी विपुल परिमाण में ऐसा साहित्य उपलब्ध होता है जिसमें दलित-विमर्श पर्याप्त मात्रा में है । यहां कहानी की चर्चा इसलिए नहीं की गई है , क्योंकि परवर्ती अध्यायों में — चौथे , पांचवे और छठे अध्याय में — उस पर विस्तार से विचार होने वाला है । यहां तक आते-आते दलित-विमर्श की अवधारणा स्पष्ट हो जाती है क्योंकि अनेकानेक उदाहरणों द्वारा उसे प्रस्तुत किया गया है ।

कहानी तथा उपन्यास में दलित-विमर्श का प्रारंभ आधुनिक काल के अन्तर्गत प्रेमचंद युग से शुरू होता है । अतः चतुर्थ अध्याय में हमने प्रेमचंद तथा प्रेमचंद-स्कूल के कहानीकारों की कहानियों में जो दलित-विमर्श उपलब्ध होता है, उसकी चर्चा की है । इस अध्याय में प्रेमचन्द की कहानियों पर विशेष रूप से विचार किया गया है, अतः प्रबंधन की दृष्टि से, अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर, यहां थोड़ा व्यतिक्रम हमने किया है । पहले प्रेमचन्द-स्कूल के कहानीकारों की चर्चा की है जिसमें पांडेय बेचेन शर्मा उग्र, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आचार्य चतुरसेन शास्त्री महापंडित राहुल सांकृत्यायन, उपेन्द्रनाथ अश्क, ऋषभचरण जैन आदि की दलित-विमर्श-संपन्न कहानियों को विश्लेषित किया गया है । इसके उपरान्त प्रेमचंद की दलित-विमर्श से सम्बद्ध कहानियों की चर्चा हुई है जिनमें "सद्गति", "शूद्रा", मंदिर", "पूस की रात", "मंत्र", "कफन", "सौभाग्य के कोड़े", "घासवाली", "देवी", "ठाकुर का कुआं", "लांछन", "बाड़म", "जुरमाना", "मेरी पहली रचना", "गुल्ली डण्डा", "दूध का दाम", "लोकमत का सम्मान", "बाबाजी का भोग", "सवा सेर गेहूं", "आगा-पीछा", "सभ्यता का रहस्य", "सती" आदि मुख्य हैं । इनमें जिन कहानियों में दलित-विमर्श की दृष्टि से प्रेमचन्द का आक्रामक रवैया देखा जाता है वे कहानियां "सद्गति", "मंदिर", "मंत्र", "ठाकुर का कुआं", "मेरी पहली रचना", "दूध का दाम", "सवा सेर गेहूं" आदि हैं ।

प्रेमचन्द की "शूद्रा", "मंदिर", "घासवाली", "देवी", "ठाकुर का कुआं", "सती" आदि कहानियां प्रमाणित करती हैं कि सेवा, त्याग, पवित्रता, पातिव्रत्य आदि स्त्रियोचित उच्च मानवीय गुणों और मूल्यों पर केवल उच्च-वर्ण के लोगों का ही विशेषाधिकार नहीं है ।

प्रेमचंद के लेखन में दुराग्रह या पूर्वाग्रह नहीं है । प्रेमचंद का दृष्टिकोण सर्वत्र मानवतावादी , न्यायमूलक , समाजव्यवस्था-वादी और उत्पीड़न विरोधी रहा है । प्रेमचंद के लेखन की एक दूसरी विशेषता यह है कि उसमें विचारधारा की दृष्टि से क्रमशः विकास परिलक्षित होता है । परन्तु दलित-विमर्श विषयक उनका दृष्टिकोण हमेशा मानवतावादी रहा है । यह अकारण नहीं हुआ है कि उनकी प्रथम कहानी "मेरी पहली रचना " तथा अंतिम कहानी "कफ़न - में दलित-संदर्भ मिलते है ।

हिन्दी कहानी-साहित्य के प्रायः सभी मूर्धन्य आलोचक और विद्वान अब इस बात पर सहमत हो रहे हैं कि कि शैलेश मटियानी प्रेमचंद के बाद के एक बड़े माद्दे के कहानी-कार है । उनका जीवनानुभव कोश अत्यन्त समृद्ध है और उनमें संघर्ष की तपिश मिलती है । अतः पांचवे अध्याय में हमने मटियानीजी की 22-23 कहानियों का दलित-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अनुशीलन प्रस्तुत किया है । इन कहानियों में "नंगा" , "प्रेत-मुक्ति" , " घुघुतिया त्यौहार " , " सतजुगिया आदमी" , "लीक" , "महाभोज" , " एक कप चाः दो खारी बिस्किट " , " दो दुःखों का एक सुख " , " प्यास " , " मिट्टी " , "चील" , " विषइक्क " चिथड़े " , " पत्थर " , "गोपुली गफूरन" आदि मुख्य हैं । इन कहानियों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मटियानीजी में दलित-विमर्श के स्थान पर दलित-चिंतन अधिक मिलता है । उनकी दृष्टि किसी वाद या पूर्वाग्रह से प्रेरित नहीं है । उनकी कहानियों में जहां एक तरफ कुमाऊं का पहाड़ी ग्रामीण परिवेश उपलब्ध होता है , वहां दूसरी तरफ नगरीय या महानगरीय परिवेश मिलता है । ग्रामीण परिवेश की कहानियों में दलित जीवन की जो विडम्बनाएं मिलती है उसके मूल में वर्ण-व्यवस्था और जातिभेद

की जकड़बन्दियां और अंधविश्वास आदि हैं । महानगरीय जीवन में दलित-जीवन की जो भीषण गरीबी है उसके मूल में पूंजीवादी शोषण-व्यवस्था है । यहां बम्बई के उस जीवन को भी दलित-जीवन के अंतर्गत रखा गया है जो झोंपड़पट्टी और फुटपाथ के लोगों का है । इसमें कोढ़ी , भिखारी , चोर , बदमाश , उठाईगिर , पाकेट-मार , दादा-माफिया और गुण्डों का संसार है । लेखक ने दलित-पलित जीवन जीने वाले लोगों में भी कहीं-कहीं इन्सानियत के दर्शन करवाये हैं , तो खूंखार दादाओं और माफिया सरगनों को भी पिघलते और पसीजते बताया है । दलित जातियों में इधर जो नयी चेतना आयी है उसको भी लेखक ने रेखांकित किया है । इन कहानियों में उन्होंने जहां एक तरफ तथाकथित ऊंची और संपन्न जातियों के खोखलेपन को बताया है , वहां दूसरी तरफ सडांध-भरा जीवन जी रहे लोगों में मानवीय मूल्यों को उकेरा है । इनमें कहीं कुछ ऐसे पात्र भी मिल जायेंगे जिनमें अभी कहीं थोड़ा-सा मनुष्य होने का अहसास शेष है , तो कहीं ऐसे पात्र भी हैं जो मनुष्य होने की चेतना खो बैठे हैं । प्रेमचंदजी की भांति मटियानीजी में भी कहीं-कहीं ऐसे नारी पात्र मिल जाते है जो लाख गरीबी और विपदाओं के बावजूद अपने मान-सम्मान और "मरजाद" पर कायम रहते हैं ।

छठे अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर काल के दलित तथा दलितेतर लेखकों की लगभग 32-33 कहानियों का विमर्श प्रस्तुत किया गया है । कहानियों का उल्लेख पूर्ववर्ती पृष्ठों में प्राक्कथन के अन्तर्गत पृ. संख्या 13 पर किया गया है । अतः उसकी पुनरावृत्ति को यहां टाला है । इनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि , डा. कुसुम वियोगी , डा. योगेन्द्र मेश्राम , जहांगीरखान , दया पवार , गोपाल रेड्डगांवकर , योगि-राज वाघमारे , जयप्रकाश कर्दम , सूरजपाल चौहान , डा. रमणिका गुप्ता , डा. दयानंद बटोही , डा. मोहनदास नैमिशराय प्रभृति दलित लेखकों की कहानियों के साथ-साथ कुछ 16-17 दलितेतर

xxxxxxxलेखकों की पर सीधे दलित-जीवन से जुड़ी हुई कहानियों को लिया है । ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी "अम्मा" दलित-चेतना संपन्न एक तटस्थ एवं निरपेक्ष कहानी है । इस कहानी की "अम्मा" एक दलित-चेतना संपन्न नारी है । वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर कुछ योग्य बनाती है और उनको अपे पुश्तैनी काम से निजात दिलाती है । परन्तु यहां लेखक ने तटस्थता के xxxxx साथ यह चित्रित किया है कि यह पढ़ा-लिखा दलित तबका किस तरह भ्रष्ट हो रहा है और वही कर रहा है जिसके लिए अगड़ी जाति के लोगों की निन्दा की जाती है । कुछ ऐसी कहानियां हैं जिनमें दलित-जीवन की भयंकर-भीषण गरीबी का यथार्थ आकलन हुआ है जिनके कारण मानवीय जीवन-मूल्य चरमरा उठते हैं । ऐसी कहानियों में xxxxxxxxxxxxxxxx गोपाल रेडगांवकर कृत " मुरदे" , योगीराज वाघमारे कृत "गुजर-बसर" आदि हैं । दया पवार कृत "गिद्ध " की सईबाई प्रेमचंद और मटियानी के उन नारी पात्रों की याद दिलाती हैं जो अपने मान-सम्मान और "मरजाद" की रक्षा हर हालत में करती हैं । कुछ कहानियों में दलित-चेतना के स्वर अधिक मुखर होकर उभरे हैं , ऐसी कहानियों में डा. योगेन्द्र मेश्राम कृत " आगे बढ़ो ... " , डा. कुसुम वियोगी कृत " और वह पढ़ गई ... " आदि को परिगणित कर सकते हैं । विद्रोहात्मक स्वर की कहानियों में डा. कुसुम वियोगी कृत "अंतिम बयान " , "सूरजपाल चौहान कृत "छूत कर दिया" , डा. रमणिका गुप्ता कृत " परनाम नेताइन जी " , डा. दयानंद बटोही कृत " सुरंग " , जयप्रकाश कर्दम कृत "सांग" , प्रह्लादचन्द दास कृत " लटकी हुई शर्त " , मोहनदास नैमिशराय कृत "अपना गांव " प्रभृति कहानियों को ले सकते हैं । दलितेतर लेखकों की कहानियों में दलित-जीवन की कुछ समस्याओं और नंगी वास्तविकताओं को बेपर्द किया गया है । इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में हमने स्वातंत्र्योत्तर दलित-स्वरों को

उभारने की चेष्टा की है ।

दलित-विमर्श आधुनिक काल का एक अहम और प्रमुख मुद्दा है ।जैसा कि इस प्रबंध में बताया गया है यह ज्योत तो बुद्धदेव के के समय से प्रज्वलित हुई है और बौद्धधर्म यदि भारत से लुप्तप्राय न होता तो कदाचित हमारा इतिहास कुछ दूसरे प्रकार का होता । परन्तु जहां तक शब्द का सवाल है , यह शब्द — " दलित-विमर्श " आधुनिक काल की देन है । कुछ लोग "दलित-साहित्य " के संदर्भ में अपने तर्क और कुतर्क भी रख रहे हैं और दलित-लेखकों की ओर से उनके जवाब भी दिए जा रहे हैं । कुछ दलित लेखक इस चिल्लपो की बिलकुल परवाह किए बिना अपना रचनात्मक कार्य किए जा रहे हैं । इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में यह मुद्दा चर्चा के निकष पर है और खरा उतर रहा है । पश्चिम में भी " ब्लेक लिटरेचर " की चर्चा हो रही है , इतना ही नहीं , उनके लेखकों और कवियों को वैश्विक मान्यता और सम्मान भी प्राप्त हो रहा है । ऐसे समय में मेरा यह कार्य एक विशिष्ट उपादेयता रखता है । समय की यह "ताती" जरूरत है । अब इन स्वरों को अधिक समय तक दबाया नहीं जा सकता ।

इस दिशा में दूसरे कामों की संभावना को मैं नकार नहीं सकती । इस प्रबंध में "कहानी" विधा को लिया है । दूसरी विधा-ओं को लेकर भी इस तरह का काम हो सकता है । डा. बाबासाहब अम्बेडकर की विचारधारा को ही व्यक्त करने वाले साहित्य को लेकर अलग से कार्य हो सकता है । दलित लेखकों और कवियों ने बाबासाहब को लेकर भी अब विपुल साहित्य की रचना की है , वह भी एक खोज और अनुसंधान का विषय हो सकता है । केवल दलितों द्वारा प्रणीत साहित्य को लेकर भी खोज-अनुसंधान की संभावना को नकारा नहीं जा सकता । वस्तुतः यह तो ज्ञान का क्षेत्र है और उसकी भी " कोई हद " नहीं होती है । अनंत आकाश की संभावनाएं

है और कौन नहीं जानता कि " वादे वादे जायते तत्वबोधः " ।

मेरा यह कार्य यदि इस क्षेत्र के अध्येताओं और अनुसंधित्सुओं को तनिक भी लाभ पहुंचा सका , तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगी । अपनी सीमा और शक्ति का अहसास मुझे है । अतः त्रुटियों के लिए पहले से ही "क्षमस्व " कह देती हूं ।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया के द्वारा निष्कर्षको रखने का यथा शक्ति-मति यत्न किया है । अध्याय के अंत में "संदर्भानुक्रम " यथासंभव वैज्ञानिक विधि से प्रस्तुत किए गए हैं । प्रबंध के अन्त में "संदर्भिका " ( बिब्लिओग्राफी ) को अकारादि क्रम से रखा गया है ।

अन्ततः प्रबंध जैसा भी है विद्वानों के सम्मुख है । अपनी सीमाओं से मैं अभिज्ञ हूं । और जगदीश गुप्त की निम्न पंक्तियों के साथ विरमती हूं —

" वर्ण से होगा नहीं अब त्राण
कर्म से ही मनुज का कल्याण
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण
वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार
कर्म सबके लिए सम आधार ।"

( शम्बूक से , पृ. सं. 62 )

पुनः पुनः सबको आभार सहित —

======= XXXXX ======